लेती हैं। वास्तव में ये हिन्दू ऋषियों के मस्तिष्क के चमत्कार ही हैं, जिनमें ज्ञान, उपदेश, भक्ति, दान, तप, कर्म की सद् शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं। मनुष्य के असुरत्व को घटाकर उसमें देवत्व की, न्याय की, सतोगुण की, धर्मपक्ष की प्रवृत्ति उत्पन्न करना, ठीक दिशा में कदम आगे बढ़वाना और सत्य से लड़ना या उसका विरोध करने के लिए सदा तत्पर बनना, इन कथाओं का उद्देश्य है।

इस पद्धति से अच्छा कल्याणकारी वातावरण उत्पन्न होता है और नारियों के चरित्र-निर्माण में इनका विशेष महत्व है। आवश्यकता इस बात की है कि इन सब धार्मिक लोक कथाओं को एकत्रित कर इनके सस्ते सर्वसुलभ संस्करण तैयार कराये जायँ और स्कूलों में इनका व्यापक प्रचार किया जाय। इनकी भाषा सरल और बोधगम्य रखी जाय जिससे हमारे ग्रामीण भाई भी इन्हें आसानी से समझ सकें।

हमारे पुराणों में जो छोटी-छोटी कथाएँ हैं, उनमें भारतीय संस्कृति का खजाना छिपा हुआ है। अनेक प्रकार के उच्च कोटि के उपदेश, ज्ञानसूत्र, प्रतीक, उपयोगी तत्व इनमें भरे पड़े हैं। हमारे पुराणों में हमारे उन पूर्वजों की यशोगाथाओं का संग्रह है, जिनसे हमारा संस्कारों और रक्त का सम्बन्ध है। वे स्वभावतः हमें प्रिय हैं। उनका प्रभाव केवल हमारे मस्तिष्क पर ही नहीं, हृदय पर भी पड़ता है। यदि हम पुराणों की कथाओं को ही सुनाएँ, तो उन अलौकिक कथाओं के साथ ऐसी कथाएँ भी सुनने को मिलती हैं, जो हमारे अन्धकारमय जीवन में प्रकाश उत्पन्न करती हैं और इतिहास की कसौटी पर भी सत्य उतरती हैं। पुराण स्वयं अपने पाठकों की त्रुटियों को पहचानते और शंकाओं का समाधान करते हैं। उनकी कथाओं को कह और सुनकर जो आनन्द और उच्च जीवन के लिए प्रेरणा मिलती है, वह वर्णनातीत है। पौराणिक गाथाएँ तो हमारे वे भण्डार हैं, जिनमें छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु एक स्थान पर सरल ढंग से सजा कर रख दी गई है। हम उनके एकमात्र अधिकारी हैं। फिर यदि हम उनकी उपेक्षा करते हैं, तो यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

६- देववाद (परमात्मा की नाना शक्तियों के प्रतीक)

भारतीय संस्कृति में नाना देवी-देवताओं का विधान है। ईश्वर वह तत्व है जिससे इस विस्तृत प्रकृति का कार्य नियमपूर्वक चलता है, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र सब अपना-अपना निर्धारित कार्य पूरी नियमितता से करते हैं, तनिक भी अन्तर नहीं पड़ता । दिन, रात या मौसमों, बचपन, यौवन, वृद्धावस्था आदि सभी के क्रम ठीक-ठीक तरह चलते रहते हैं। ईश्वर की ये कृतियाँ पुकार-पुकार कर अपने निर्माता की साक्षी दे रही हैं।

ईश्वर-तत्त्व केवल निर्माता या पालनकर्ता ही नहीं है, उसके नाना गुण हैं, नाना शक्तियाँ हैं। ईश्वर की निर्माण करने वाली शक्तियों को पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश आदि पाँच भूतों के नाम से पुकारा जाता है। इनसे जड़ पदार्थों की रचना होती है। सजीव रचना को प्राणी जगत कहते हैं। जड़ और चेतन इन दो नामों में सृष्टि विभक्त है। चेतन प्राणियों में जीवन बनाए रखना, उन्नति करना तथा आनन्द भोगना—ये चेतन सृष्टि के तीन गुण हैं, जिन्हें सत्, चित्, आनन्द नाम से पुकारते हैं। जड़—जगत की रचना पंच भूतों की क्रियाशीलता है, वैसे ही चेतन-जगत की मूल प्रकृति सत्, चित्, आनन्द तत्वों के कारण से है। जड़ और चेतन दोनों ही पक्षों की रचना करने वाले यह पृथक-पृथक तत्व मूल रूप से एक ही ईश्वर-तत्त्व की धाराएँ हैं। ईश्वर-तत्त्व हर एक स्थान पर व्यापक है, अणु—अणु में व्याप्त है, पर जहाँ सत्य, प्रेम, विवेक, सदाचरण हैं, वहाँ ईश्वर-तत्त्व विशेष रूप से विद्यमान है। धर्मात्मा, मनस्वी, उपकारी, विवेकवान् और तेजस्वी व्यक्तियों में ईश्वर-तत्त्व की अधिकता के कारण ही उन्हें 'अवतार' कहा जाता है। ईश्वर-तत्त्व लाभप्रद है। मानव तथा पशु समाज दोनों के लिए समान रूप से कल्याणकारी है। इसी को हम यों भी कह सकते हैं, कि जो-जो पशु या प्राणी कल्याणकारी तत्वों से भरे हुए हैं, उन्हें ईश्वर तत्व के अधिक समीप मानना चाहिए। अन्य पशुओं की अपेक्षा गौ में तथा अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दू में, अन्य वर्णों की अपेक्षा ब्राह्मण में उपकारी तत्त्व अधिक होने से इनको ईश्वर-शक्ति से भरपूर माना गया है।

कम बुद्धि वाले व्यक्तियों को ईश्वर जैसी आद्य बीज-शक्ति के भेद-विभेदों को समझाना कठिन है। एक ही स्थान पर इतने प्रकार के तत्व कैसे रह सकते हैं ? इस गुप्त भेद को समझाने के लिए भारतीय अध्यात्म वेत्ताओं ने साधना के सरल मार्ग निकाले हैं। साधना में ध्यान-योग प्रधान है। मनोविज्ञान के अनुसार ध्यान उसी वस्तु का हो सकता है, जो स्थूल हो, जिसे हम अपनी पाँचों इन्द्रियों (विशेषतः नेत्रों) से अनुभव कर सकें। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में ध्यान के लिए रूप का स्थान सर्वोपरि है। जिसे हम अपनी आँख से देख सकें, उस पर हम अपना ध्यान देर तक जमाये रह सकते हैं। आचार्यों ने मनोविज्ञान के उपर्युक्त मर्म का ध्यान रखते हुए ईश्वर के रूप की कल्पना की है। चूँकि साधना करने वाले मनुष्य हैं, मनुष्य के रूप को ही सबसे श्रेष्ठ समझते हैं, ईश्वर के लिये उन्नतिशील मनुष्य के रूप की ही कल्पना की गई है। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, गणेश, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि मनुष्य रूपधारी ईश्वर नाना शक्तियों की प्रतिमाएँ बनाई गई। इन भिन्न-भिन्न ईश्वरीय प्रतिमाओं को हम देवी-देवता कहते हैं। करोड़ों देवी-देवता हैं। वास्तव में ये पृथक सत्ताऐं न होकर एक ईश्वर की ही प्रतीक हैं। ध्यान योग के लिए इन असंख्य देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ है।

जब हम ध्यान करने बैठते हैं, तो किसी देवी-देवता की काल्पनिक मूर्ति को मन में आधार रूप से जमा लेते हैं। उच्च शक्तियों से पूर्ण आदर्श मानसिक मूर्ति की सहायता से हमारा ध्यान अच्छी तरह जम जाता है। अधिक दिन साधन-पूजा और ध्यान-साधना से उन्ही गुणों का विकास साधक में होने लगता है। मूर्ति-पूजा उन साधकों के लिए विशेष उपयोगी है, जो अल्प बुद्धि के कारण निराकार ईश्वर का चिंतन नहीं कर पाते। मूर्ति-पूजा से हम मानसिक उन्नति कर सकते हैं और ऐसी-ऐसी शक्तियों को मन में बसा सकते हैं, जो प्रारम्भ से हम में न हों।

जब हम हिंदू देवी-देवताओं को किसी भी मूर्ति को चुन कर उसकी गुप्त शक्तियों पर ध्यान करने का आग्रह करते हैं, तो हमारा तात्पर्य केवल यही होता है कि इन्हें आधार मानकर चलना चाहिए। धातु, पत्थरों या चित्रों को ईश्वर कदापि नहीं मानना चाहिए। ये चित्र और हिंदू देवमूर्तियाँ तो आपके लिए निराकार ईश्वर-तत्त्व के आधार मात्र हैं। आपके चिंतन में सहायक हैं। प्रत्येक मूर्ति का जो निहित तात्पर्य है, शक्तियों के जो-जो गुप्त भण्डार उनमें स्पष्ट किए गए हैं, उन पर चिंतन करने से वे ही दिव्य गुण मनुष्य में स्वतः विकसित हो जाते हैं। देववाद हमारे व्यक्तिव को दिव्य गुणों से ओत-प्रोत करने और प्रभावशाली बनाने का एक प्रतीकवादी मनोवैज्ञानिक साधन है। हमारे ऋषि-मुनियों ने ईश्वर की प्रत्येक गुप्त शक्ति को देवताओं तथा देवियों के प्रतीकों से चित्रित कर दिया है। ऐसी प्रतीक पद्धति अन्य धर्मों में कहीं भी नहीं पाई जाती। हिन्दू धर्म साधारण बुद्धि और योग्यता वाले साधकों के लिए भी इसीलिए उपयोगी और बुद्धि की पहुँच के भीतर है। देवी-देवताओं के पूजन से प्रारम्भ कर साधक धीरे-धीरे देवताओं की शक्तियों पर मानस नेत्र केन्द्रित करता है और अपने व्यक्तिव का नए ढंग से विकास करता है।

कालान्तर में लोग देवताओं की इन मूर्तियों के प्रतीक को भूल गए। किस-किस देव-मूर्ति का क्या गुप्त अर्थ है, इसे समझने की चेष्टा भी नहीं की गई। ब्राह्मणों ने इस दिशा में कुछ भी विशेष प्रयत्न न किया। फल यह हुआ कि यह पूजा केवल ढकोसला मात्र रह गई। धीरे-धीरे जनता प्रतीकों का गुप्त अर्थ भी भूलती गई। हमारी देव मूर्तियाँ केवल खिलौने मात्र रह गईं। आज भी देववाद की यही दुर्गति है। अस्थिर और अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति उनके प्रतीकों का अर्थ न समझ कर उन्हें कौतूहल की वस्तु समझते हैं। दूसरे धर्म वाले उनको उपहासास्पद मान बैठते हैं। यह नासमझी के कारण ही हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक भारतीय स्वयं इन प्रतीकों का अर्थ समझे और वाणी द्वारा अपने भाई-बहिनों को उसका अर्थ समझावे। हमें यह मानकर चलना चाहिए कि देववाद का आधार मनोवैज्ञानिक है, पूरे-पूरे आधारों पर टिका हुआ है, तथ्यपूर्ण है और सर्वथा मान्य है। इसके स्पष्टीकरण मात्र की जरूरत है।